उत्तर भारत और दक्षिण भारत के मंदिर वास्तु का तुलनात्मक अध्ययन – मंदिर स्थापत्य

ईशा मौर्या
डॉ0 कामना शुक्ला

कृपालु महिला महाविद्यालय,
कुण्डा प्रतापगढ़

भारतीय मंदिरों का आविर्भाव अचानक नहीं हुआ, अपितु इसके पीछे एक सुदीर्घ परम्परा दिखाई देती है। मंदिर निर्माण की प्रकिया का आरम्भ तो मौर्य काल से ही शुरू हो गया था, किन्तु आगे चलकर उसमें सुधार होता गया और गुप्तकाल को संरचनात्मक मंदिरों की विशेषता से पूर्ण देखा जाता है।

अति प्राचीन काल में मंदिर वेदी के रूप में खुले आकाश के नीचे बनाये जाते थे, जिसे 'चौरण' कहा जाता था। इसके ऊपर देव प्रतीक रखकर पूजा–अर्चना की जाती थी। मंदिर निर्माण के दूसरे चरण में वेदी के चारों ओर बाड़ बनाने की प्रथा प्रारम्भ हुई, इसे 'प्राकार' कहा गया। पहले यह बांस या लकडी का बनता था, जिसे अंततः पाषाण का बनाया जाने लगा। गुप्त काल से बने मंदिरों की निम्नलिखित कमियाँ थी –

- इनका आधार छोटा था।
- गर्भ–गृह तक पहुँचने के लिये सीढ़ियाँ नहीं थी।
- छतें सपाट थी, जिस कारण वर्षा जल के निकास की समस्या थी।
- ये आकार में बेहद छोटे होते थे।
- अलग से काई प्रदक्षिणा–पथ नहीं था।

प्राचीनतम मंदिर संरचना–

स्थापत्य के विकास की दृष्टि से गुप्तकाल को प्राचीन भारत के इतिहास का 'स्वर्ण युग' कहा जाता है। देश की आर्थिक संवृद्धि तथा राजनैतिक स्थिरता के परिणाम स्वरूप स्थापत्य के क्षेत्र में इस काल में चहुँमुखी विकास हुआ। दुर्भाग्य से वास्तुकला के क्षेत्र में गुप्तकाल की उपलब्धियों के अधिकाधिक अवशेष प्राप्त नहीं हो सके। बहुधा यह कहा जाता है कि आगे मुसलमानों की मूर्तिभंजक नीति के परिणामस्वरूप अधिकांश स्थापत्य नष्ट हो गये होगें। इसके साथ ही दूसरा तथ्य यह हो सकता है कि गुप्तकाल के मंदिर अप्रभावी पूजा स्थल थे, जो

आवासिक वास्तुकला में खो गये या फिर आने वाली सदी में उनका पुर्ननिर्माण किया गया। फिर भी यह सत्य है कि गुप्तकाल संरचनात्मक मंदिरों की कुछ सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार है–

- मंदिरों का निर्माण ऊँचे चबूतरों पर होता था।
- मंदिरों के चबूतरों तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ बनाई जाती थी।
- मंदिर के भीतर एक चौकोर अथवा वर्गाकार कक्ष बनाया जाता था जिसमें मूर्ति रखी जाती थी, इसे 'गर्भगृह' कहते थे।
- गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणा –पथ बना होता है।
- मंदिरों की सपाट छत पर शिखर बनाने की शुरूआत हुई।

नागर शैली–

मंदिर स्थापत्य की इस शैली का विकास हिमालय से लेकर विन्ध्य क्षेत्र तक हुआ। नागर स्थापत्य के मंदिर मुख्यतः नीचे से ऊपर तक आयताकार रूप में निर्मित होते है। उत्तर भारतीय मंदिर शैली में मंदिर एक वर्गाकार गर्भगृह स्तम्भों वाला मंडप तथा गर्भगृह के ऊपर एकरेखीय शिखर से संयोजित होता है। कभी –कभी वह पंचायतन प्रकार के होते है, जिसमें एक जगती के ऊपर मध्य में मुख्य मंदिर होता है और उसके चारों कोनों पर चार छोटे देवालय होते है। मंदिर एक ऊँचे चबूतरे पर स्थापित होता है, जिसे 'जगती' कहते हैं तथा जिस पर जाने के लिए कभी –कभी तीनों ओर से सीढ़ियाँ बनीं होती है।

उत्तर तथा दक्षिण की पूजा विधि के अंतर से मंदिर वास्तु में भी अंतर बना है। पहले के मंदिर में गणेश, स्कंद, गज आदि गौण देवताओं को केवल वास्तु के सौंदर्यवर्धन हेतु उकेरा जाता था। पर अब इनकी महत्ता बढ़ने से इनके भी मंदिर बनने लगे।

नागर शैली में बने मंदिरों के गर्भगृह के ऊपर एकरेखीय शिखर होता है। यह प्रायः तीन उभारों से संयोजित होता है, जिसमें सबसे मध्य के उभार को 'भद्ररथ' कहते है तथा सबसे किनारे वाले उभार को 'कर्नरथ' कहा जाता है। भद्ररथ तथा कर्नरथ के मध्य के उभार के 'प्रतिरथ' की संज्ञा दी जाती है। विकास क्रम में धीरे–धीरे शिखर पर तीन, पाँच, सात, तथा नौ उभारों को बनाया गया। शिखर का सबसे महत्वपूर्ण भाग सबसे ऊपर लगा आमलक होता है, जो उत्तरी भारत के मेदिरों की मुख्य पहचान है।

नागर स्थापत्य की विशेषताएँः

- नागर शैली में शिखर अपनी ऊँचाई के क्रम में ऊपर की ओर पतला होता जाता है।
- मंदिर में सभा भवन और प्रदक्षिणा–पथ भी होता है।
- शिखर के नियोजन में बाहरी रूपरेखा बड़ी स्पष्ट तथा प्रभावशाली ढंग से उभरती है। अतः इसे रेखा शिखर भी कहते है।
- शिखर आमलक की स्थापना होती है।

- वर्गाकार तथा ऊपर की ओर वक्र होते इसकी विशेषता है।

नागर शैली के मंदिर की संरचना–

मंदिर की तुलना मानव शरीर के विभिन्न अंगों से की गई, क्योंकि नागर शैली में ऐसा अवयव दृष्टिगोचर होता है। आदर्श मानव शरीर की संरचना के समान मंदिर की संरचना पर बल दिया गया। इसे निम्न बिन्दुओं के आधार पर देखा जा सकता है।

- मानव शरीर का सारा भार जिस अंग पर टिका होता है, वह पैर है। इसी प्रकार संपूर्ण मंदिर का भार जिस पर रहता है, उसे 'पाद–अधिष्ठान' या 'जगती पीठ' कहते है। इसे सामान्य भाषा में 'चबूतरा' कहते है, जो कि कुछ ऊँचाई पर होता है।
- शरीर के अन्यतम भीतर गुप्त क्षेत्र 'कटि प्रदेश' कहते है। इसी प्रकार मंदिर का अन्यतम भीतरी गुप्त क्षेत्र 'गर्भगृह' कहलाता है।
- कमर के ऊपर शरीर के आंतरिक विस्तृत क्षेत्र को 'उदर' कहते है। मेदिर के आंतरिक विस्तृत क्षेत्र को 'विमान' कहते है।
- शरीर का बाह्य विस्तृत क्षेत्र स्कंद वक्ष है और मंदिर के बाहय विस्तृत क्षेत्र को शिखर कहते है
- शरीर के ऊपरी गोलाई लिये हुए भाग को गर्दन कहते है मंदिर का ऊपरी गोलाई वाला भाग ग्रीवा या शुकनासिका है
- शरीर का सबसे ऊपरी हिसां सिर है वैसे ही मंदिर का सबसे ऊपरी हिस्सा आमलक स्तूप है।

तकनीक के आधार पर यदि देखा जाए तो उठता हुआ विमान तल और शिखरनुमा छत का समन्बय ही नागर शैली की मुख्य पहचान या विशेषया है।

नागर शैली की उप–शैलियाँ–

नागर शैली सम्पूर्ण उत्तर भारत पर प्रभावी रही, इसलिए उत्तर भारत के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों की अपनी स्थानीय विशेषता के साथ उसकी उप–शैलियाँ भी उभरती गई जैसे–

- उड़िया उपशैली–ओडिशा में
- अंतर्वेदी उपशैली–उत्तर प्रदेश, हरियाणा, दिल्ली
- खुजराहों उपशैली–मध्यप्रदेश
- चालुक्य/ सोलंकी उपशैली– गुजरात एवं दक्षिण राजस्थान
- कश्मीरी उपशैली– कश्मीर में।

क्षेत्रीय शैलियों में बने मंदिरों को ओडिशा में 'कलिंग' गुजरात में 'लाट' और हिमालयी क्षेत्र में पर्वतीय कहा गया।

भीतर गाँव का विष्णु मंदिर–

विश्व का प्राचीनतम खड़ा हुआ ईंट का हिन्दू मंदिर (गुप्तकालीन)

कानपुर जिला में कानपुर नगर से लगभग दक्षिण में भीतरगाँव स्थित है जहाँ गुप्तकालीन एक भव्य मंदिर है। यहाँ इटों का प्राचीनतम शिखर युक्त मंदिर एक ऊचें चबूतरे (जगती पीठ) पर निर्मित है। इसकी तीन ओर की बाहरी दीवरों के बीच में आगे की ओर निकली हुई है। पूर्व की ओर (सामने) जाने की सीढ़ियाँ और द्वार है, द्वार के भीतर मंडप है और फिर उसके आगे गर्भ गृह में जाने का द्वार है। गर्भ गृह के ऊपर एक कमरा है मन्दिर की छत शुण्डाकार है। इसकी बहरी दीवारो को देवी–देवताओ की मूर्तियो से सजाया गया है। मन्दिर का शिखर पिरामिड के आकार का है। शिखर पर चारो तरफ चैत्य की चित्रकारी की गई है।

प्रो0 कृष्ण दत्त बाजपेयी के अनुसार "मन्दिर के निर्माण में सादगिय होते हुए भी वस्तुगत अनेक नवीनताएँ है, जो गुप्त युग के अरम्भिक मन्दिर में नही है।"

देवगढ़ का दशावतार मन्दिर–

ललितपुर जिला में बेंतवाँ नदी के तट पर स्थित देवगढ़ में एक ध्वस्त विष्णु मन्दिर है। इसमें अंतशयी विष्णु की प्रतिमा है। मन्दिर की जगती पीठ ऊँचे चबूतरे पर है। चबूतरे के चारो ओर साढ़े पन्द्रह फुट लम्बी सीढ़ियाँ है। ताराश कर उत्कीर्ण किये गये पाषाण खण्ड़ो द्वारा निर्मित इस मन्दिर में गुप्तकालीन मन्दिर स्थापत्य अपने चर्मोत्कर्ष पर दिखायी देता है। टुटी–फूटी अवस्था में होते हुये भी यह मन्दिर अपनी वस्तविकता को परिलक्षित करता है।

यह मन्दिर डेढ़ मीटर ऊँचे अधिष्ठान पर निर्मित है। यहाँ पर शेषशायी विष्णु तथा गजेन्द्र मोक्ष के चित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके ऊपर बना हुआ मंडप प्रायः मूर्ति फलको को सुरक्षा प्रदान करने के लिए निर्मित किया गया था।

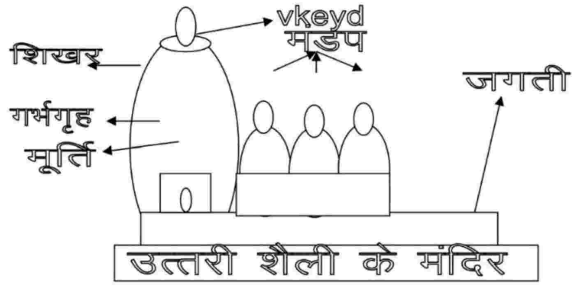

देवगढ़ का दशावतार मंदिर

द्रविड़ शैली–

- 7वीं शताब्दी में द्रविड़ शैली की शुरूआत हुई, परंतु इसका विकसित रू॰ आठवीं शताब्दी से देखने को मिला और सुदूर दक्षिण भारत में इसकी दीर्घकालिकता 18वीं शताब्दी तक बनी रही।
- कृष्णा नदी से लेकर कन्याकुमारी तक द्रविड शैली के मंदिर पाए जाते है।

- द्रविड मंदिर का निचला भाग वर्गाकार और मस्तक गुबंदाकार, 6 या 8 पहलुओं वाला होता है।
- द्रविड शैली की पहचान सम्बंधी विशेषताऐं– प्रकार (चहारदीवारी),गोपुरम (प्रवेश द्वार), वर्गाकार गर्भ–गृह (रथ), पिरामिडनुमा शिखर, मंडप (नंदी मंडप) विशाल संकेद्रित प्रांगण तथा अष्टकोणीय मंदिर संरचना शामिल है।
- पल्लवों ने द्रविड शैली को जन्म दिया, चोल काल में इसमे ऊँचाइयाँ हासिल की तथा विजयनगर काल के बाद में इसमें हास आया।
- चोल काल में द्रविड शैली की वास्तुकला में मूर्तिकला और चित्रकला का संगम हो गया।
- यूनेस्को की विश्व विरासत सूची में शामिल तंजौर का वृहदेश्वर मंदिर (चोल शासक राजराज प्रथम द्वारा निर्मित) 1000 वर्षो में द्रविड शैली का जीता–जागता उदाहरण है।
- द्रविड शैली के अंतर्गत ही आगे नायक शैली का विकास हुआ जिसके उदाहरण है– मीनाक्षी मंदिर (मदुरै), रंगनाथ मंदिर (श्रीरंगम, तमिलनाडु), रामेश्वरम् मंदिर आदि।

पल्लव कालीन स्थापत्य कला

- पल्लव काल के विकास की शैलियों को क्रमशः–
  1. महेन्द्र शैली (610–640ई0) मामल्ल शैली (640–674ई0)
  2. राजसिंह शैली (674–800ई0) नंदिवर्मन–अपराजित वर्मन शैली (8वीं–9वीं शताब्दी) में देखा जा सकता है।
- पल्लव शासक महेन्द्र वर्मन के समय वास्तुकला में 'मंडप' निर्माण प्रारम्भ हुआ।
- राजा नरसिंहवर्मन ने चिंगलपेट में समुद्र किनारे महाबलीपुरम नामक नगर की स्थापना की और 'रथ ' निर्माण का शुभारंभ किया।
- पल्लव काल में रथ या मंडप दोनों ही प्रस्तर काटकर बनाये जाते थे।
- पल्लव कालीन आादि–वराह, महिषामर्दिनी, पंचपांडव, रामानुज आदि मंडप विशेष प्रसिद्ध है।
- 'रथ मंदिर' मूर्तिकला का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करते है, जिनमें धर्मराज रथ, द्रौपदी रथ, नकुल–सहदेव रथ, अर्जुन रथ, भीम रथ, गणेश रथ, पिंडारि रथ तथा वलैयंकुट्टै प्रमुख है।
- इन आठ रथों में द्रौपदी रथ एक मंजिला और छोटा है, बाकी सातों रथों कों 'सप्तपैगोडा' कहा गया।
- पल्लव काल की अंतिम एवं महत्वपूर्ण 'राजसिंह शैली' में रॉक कट आर्किटेक्चर (शैली कर्त्तन)के स्थान पर पत्थर, ईंट आदि से मंदिर का निर्माण शुरू हुआ।
- राजसिंह शैली के उदाहरण महाबलीपुरम के तटीय मंदिर, अर्काट का पनमलाई मंदिर, काँची के कैलाशनाथ और बैकुंठ पेरूमल का मंदिर आदि है।

- बैकुंठ पेरूमल मंदिर में भगवान विष्णु की मूर्तियों के साथ–साथ दीवारों पर युद्ध राज्याभिषेक, अश्वमेध, नगर जीवन आदि के दृश्यों को भी अत्यंत सजीवता एवं कलात्मकता के साथ उत्कीर्ण किया गया है।
- पल्लव काल के नंदिवर्मन–अपराजितवर्मन शैली में संरचनात्मक मंदिर निर्माण की शुरूआत हुई और दक्षिण भारत में एक स्वतंत्र शैली उभरी, जिसे 'द्रविड़ शैली' कहा गया।

महाबलीपुरम् के रथ मंदिर (तमिलनाडु)–

यहां देवताओं की शोभायात्रा निकालने की पुरानी परंपरा रही है। इसमें रथ पर देव मूर्तियों को बिठाकर उनकी शोभायात्रा निकाली जाती थी। इसी परिकल्पना को साकार रूप पल्लव शासक नरसिंह वर्मन महामल्ल ने वास्तु में दिया। इन मंदिरों का निर्माण नरसिंह वर्मन द्वारा 630 ई–658 ई के बीच मद्रास से 32 मिल दक्षिण समुद्र तट पर चिंगलपेट में हुआ था। इसलिए इन्हें महाबलीपुरम का रथ मंदिर भी कहते हैं।

यह रथ मंदिर पर्वत को काटकर बनाए गए हैं इनकी संख्या आठ है उनके नाम निम्न हैः–

1. धर्मराज
2. भीम
3. अर्जुन
4. सहदेव
5. गणेश
6. द्रौपदी
7. पिंडारी
8. वलैयकुट्टै

उनकी योजना प्राचीन गुफा व बिहार की शैली पर तैयार की गई। जो पहाड़ों को काटकर बनाए गए थे। यह प्राचीन काष्ठकला, घास–फूस, के बने छप्पर तथा लकड़ी की बल्लियों के अनुकरण पर एक ही पत्थर के टुकड़े को काटकर बनाए गए।

ये मंदिर एकाश्मक रथ कहे जाते हैं। यह आग्नेय चट्टान से निर्मित हैं।

कांजीवरम का बैकुंठ पेरूमल मंदिर (तमिलनाडु)

पल्लवों के अधिकांश मंदिर शैव धर्म से संबंधित है। यह उन मंदिरों में से एक है, जो थोड़े बहुत वैष्णो मंदिर से संबंधित हैं। यह एक विशालकाय मंदिर है। इसका गर्भ गृह तीन मंजिला है। नीचे के गर्भ गृह में चतुर्भुजी विष्णु की शयनस्थ मूर्ति है। इसकी ऊपरी महिला निचली मंजिला से कुछ छोटी है। यह कक्ष मूर्ति रहित है।

इस मंदिर में महामंडपम मुख्य मंदिर का अंग है। मंदिर के सामने एक बरामदा है। यह स्तंभ युक्त बरामदा एक नया रूप है जो न केवल वास्तुकला में परिवर्तन का सूचक है मंदिर पूजा की पद्धति में विकास का भी सूचक है उत्तर तथा दक्षिण की पूजा विधि के

अंतर से मंदिर वास्तु में भी अंतर बना है। पहले के मंदिर में गणेश, स्कंद, गज आदि गौण देवताओं को केवल वास्तु के सौंदर्य वर्धन हेतु उकेरा जाता था। पर अब इनकी महत्ता बढ़ने से इनके भी मंदिर बनने लगे। अलग–अलग संप्रदाय के रूप में इनका विकास हुआ विष्णु मंदिर के ऊपरी छज्जे पर गरुड़ की आकृति उकेरी गई। अर्द्ध स्तंभ से मंदिर की बाहरी दीवार अलंकृत है। इस प्रकार यह मंदिर इस कल का विशिष्ट मंदिर रहा है।

वैकुण्ठ पेरूमल मंदिर का गोपुर

वैकुण्ठ पेरूमल मंदिर – कांचीपुरम

चोल कालीन स्थापत्य–

- द्रविड़ वास्तु कला या वास्तु शैली का जो प्रारंभ पल्लव काल में हुआ था उसका चरमोत्कर्ष चोल काल में देखने को मिला। इस काल को दक्षिण भारतीय कला का स्वर्ण युग कहा जा सकता है।
- चोल शासको ने द्रविड़ शैली के अंतर्गत ईंटों की जगह पत्थरों और शिलाओं का प्रयोग कर ऐसे–ऐसे मंदिर बनाये जिनका अनुकरण पड़ोसी राज्यों एवं देशों तक किया।
- चोल इतिहास के प्रथम चरण (विजयालय से लेकर उत्तम चोल) में नंगावरम का श्री सुंदरेश्वर मंदिर, कन्नूर का बाल सुब्रह्मण्यम मंदिर, नरतमालै का विजयालय, चोलेश्वर मंदिर, कुंबकोनम का नागेश्वर मंदिर तथा कदंबर मलाई आदि का निर्माण हुआ।
- महान चोलों (राजराज प्रथम से कुलोतुंग तृतीय तक) के दौरान में तंजावुर में बृहदेश्वर मंदिर का निर्माण हुआ जिसे द्रविड़ शैली का सर्वोत्तम नमूना माना जा सकता है। गंगेकोंड चोलपुरम का शिव मंदिर (राजेंद्र प्रथम) ख्याति प्राप्त है।
- इन दोनों के अलावा दारापुरम का एरावतेश्वर और त्रिभुवन का कंपारेश्वर मंदिर की सुंदर एवं भव्य है।
- चोल स्थापत्य की सबसे बड़ी खासियत है कि उन्होंने वास्तुकला में मूर्ति कला और चित्रकला का भी बेजोड़ संगम किया।
- चोल युगीन मूर्तियों में नटराज की कांस्य से प्रतिमा सर्वोत्कृष्ट है।

बृहदेश्वर मंदिर :–

तंजावुर स्थित प्रसिद्ध शैव मंदिर जिसे बृहदेश्वर और दक्षिण में मेरु के नाम से जाना जाता है। चोल सम्राट राजराज 985–1012 ई की महानतम रचना है। स्थापत्य कला की दृष्टि से यह

सर्वाधिक महत्वाकांक्षी संरचना का मंदिर है। जो ग्रेनाइट से बना हुआ है। दक्षिण भारत में स्थापत्य कला के विकास में इस मंदिर को एक युगांतकारी घटना माना गया है और इसके विमान को समग्र रूप से भारतीय स्थापत्य कला की कसौटी माना गया है।

यह मंदिर 240.9 मीटर लंबी पूर्व पश्चिम तथा 122 मीटर चौड़ी उत्तर दक्षिण विशाल आंतरिक प्राकार के भीतर स्थित है। इसमें पूर्व में एक गोपुरम तथा तीन अन्य साधारण तोरण प्रवेश द्वार है जिनमें से एक–एक पृथक दिशाओं में और तीसरा पीछे की ओर है यह प्राकार परिवलयों सहित एक दो मंजिली मालिका द्वार घिरा हुआ है यह मंदिर अपने विशालकाय अनुपात डिजाइन की सादगी के चलते भवन निर्माण कला में न केवल दक्षिण भारत बल्कि दक्षिण पूर्व एशिया में भावी डिजाइनों के लिए प्रेरणा स्रोत बना।

इसका शिकार गुमटीदार गुंबद के रूप में है। जो की अष्टकोणीय है। भव्य उपपीठ अधिष्ठान अर्थ महामुख मंडपों जैसी अच्छी रूप से निर्मित समस्त इमारतें सामान्य रूप से मुख्य पूजा स्थल से जुड़ी हैं। दीवार में बने आलों और भीतरी मार्गों में दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती और शिव के भिक्षाटन वीरभद्र कालांतक नरेश अर्धनारीश्वर और आलिंगन रूपों की आदमकद चित्रात्मक प्रतिमाएं मौजूद हैं भीतर की ओर निकले प्रदक्षिणा पथ की दीवारों पर भित्ति चित्र है। जो चोल तथा उसके बाद की अवधि के सर्वोत्तम नमूने हैं जिनमें पौराणिक दृश्यों सहित समकालीन दृश्यों को भी चित्रित किया गया है। सन 1987 में इस विश्व विरासत सूची में शामिल किया गया।